शोध-मंथन Vol. VII No. 2, 2016 ISSN No. (P) 0976-5255, (e) 2454-339X
ICRJIFR
IMPACT FACTOR
3.8942

महाभारत के तृतीय पर्व "वन पर्व" में काव्य, संगीत एवं वास्तुकला की विवेचना

डॉ. रीना*
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
आर.एस.एम. कॉलेज, धामपुर (बिजनौर)

आधुनिक युग में यह परिहार्य कार्य है कि प्राचीन काल के विभिन्न तथ्यों का पुनः मूल्यांकन किया जाये तथा आज के परिप्रेक्ष्य में उसकी उपयोगिता समझी जाये। साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। किसी काल का साहित्य उस काल में व्याप्त समाज का चित्रण करता है। वह साहित्य आज के काल का निरूपण नहीं कर सकता, कारण है सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन। अतः आज आवश्यकता है प्राचीन तथ्यों के समीक्षात्मक/विवेचनात्मक अध्ययन की, जिससे उन प्राचीन धारणाओं में संशोधन कर हम उन्हें अपने लिए उपयोगी बना सके। रामायण एवं महाभारत काल से परे है। इन्हें महाकाव्य की श्रेणी में रखा गया है।

प्रस्तुत शोध में महाभारत के तृतीय वर्व "पन पर्व" में– कला के विभिन्न प्रकारों की विवेचना का प्रयास किया गया है

काव्यकला एवं वनपर्व

'काव्य' शब्द से व्यक्ति सामान्यतः कविता का अर्थ ग्रहण करता है। इसका कारण यह है कि आज सभी पाश्चात्य दृष्टिकोण को अपनाने में लगे हुए हैं। भारतीय समाज में काव्य का अर्थ व्यापक है, कविता तक सीमित नहीं है।[1] वस्तुतः प्रचलित शब्द 'साहित्य' काव्य का पर्याय है। 'साहित्य' शब्द का सर्वप्रथम प्रणयन भामह ने किया था।[2] किन्तु यह शब्द उनके काल में प्रचलित नहीं हो पाया। नवम् शताब्दी में राजशेखर ने 'पंचमी साहित्य विद्या इति यायावर्यः'[3] लिखकर काव्यशास्त्र के लिए साहित्य विद्या नाम का निर्देश किया। दशम शताब्दी के कुन्तक ने भी 'साहित्य' नामकरण पर ध्यानाकर्षित किया।[4] तदुपरान्त इसी उद्देश्य से ग्यारहवीं शताब्दी के रुय्यक ने 'साहित्य मीमांसा' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया, किन्तु असफल रहे। चौदहवीं शताब्दी के आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसी ग्रन्थ के आधार पर भामह का 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' प्रतिष्ठित हुआ। पाश्चात्य विद्वानों ने 'काव्य' के विषय में जब भी कुछ कहा उससे कविता का अर्थ ही ज्ञापित हुआ। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में लिखा है कि कवि कार्य–कला, काव्य है। प्रसिद्ध कवि ड्राइडन ने कहा कि कविता सुस्पष्ट संगीत हैं। कॉलीरिज ने कहा कि सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम में कविता होती है। बर्डसवर्थ के अनुसार कविता प्रबल अनुभूति का सहज उद्रेक है, जिसकास स्रोत शान्ति के समय में स्मृत मनोवेगों से फूटता है। प्रसिद्ध कवि शैली के अनुसार सर्वमुखी और सर्वोत्तम मनो में सर्वोत्तम और

सर्वाधिक सुखपूर्ण क्षणों का लेखा कविता है। मैथ्यू आरनॉल्ड के अनुसार, कविता अपने मूल रूप में जीवन की आलोचना हैं। इन सभी के अतिरिक्त ले हण्ट की परिभाषा गीतिकाव्य को इंगित करता है।[5] डॉक्टर जॉनसन ने कहा कि कविता वह कला है जो कल्पना की सहायता से सत्य को आनन्द से समन्वित करती है। चैम्बर्स कोश में उद्धृत है कि कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को मधुर शब्दों में अभिव्यक्त करने की कला कविता है।[6]

काव्य की परिभाषा के स्थान पर पाश्चात्य विद्वानों ने कविता या पद्यात्मक शैली की परिभाषा दी। किन्तु भारतीय विद्वानों ने काव्य के दो रूप माने हैं– गद्यात्मक एवं पद्यात्मक। यह द्विविध काव्य ही कालान्तर में साहित्य कहलाया जो आंग्लभाषा के लिट्रेचर शब्द से साम्यता रखता है। भारतीय दृष्टिकोण से काव्य के निरूपण के लिए आचार्य विश्वनाथ का कथन कि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् रसयुक्त वाक्य काव्य है तथा पंडित जगन्नाथ का कथन कि रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द काव्य हैं। डॉ. भगीरथी मिश्र ने इन्हीं के आधार पर कहा है कि शब्द अर्थ अथवा दोनों, की रमणीयता से युक्त वाक्य–रचना को काव्य कहते हैं। यहाँ शब्द की रमणीयता, शब्दालंकार, रीति, वृत्ति, संगीत–तत्त्व आदि के रूप में देखी जा सकती है तथा अर्थ की रमणीयता अर्थालंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि, रस आदि में प्रकट होती है।[7] इस काव्य के पर्याय साहित्य के पाँच रूप होते हैं– विज्ञान, दर्शन, शास्त्र, इतिहास एवं काव्य।

महाभारत को इतिहास की संज्ञा प्राप्त है। यह सर्वविदित है, किन्तु यह काव्य भी माना जाता है।[8] स्वयं व्यास ने ग्रन्थारम्भ में ही इसे काव्य कहा है। भोजदेव की परिभाषानुसार महाभारत को काव्येतिहास की श्रेणी में रखा जा सकता है। ध्वन्यालोककार ने महाभारत को उत्तम काव्य–ध्वनि काव्य के अन्तर्गत सम्मिलित किया है।[9]

महाभारत के वनपर्व में रामोपाख्यान प्रेमाख्यान है। इसमें चित्रित प्रेम युग पुरुष राम का विवाहोपरान्त का उदात्त प्रेम है। इसके साथ ही साथ वनपर्व में नल–दमयन्ती के स्वच्छन्द प्रेम की कथा नलोपाख्यान में है। इससे द्योतित होता है कि तात्कालिक भारतीय साहित्य में दोनों प्रकार के प्रेमाख्यानों को स्थान प्राप्त था।

नीत्याख्यान में नीति के वर्णनपरक विशेष उपदेश होते हैं, जिनसे जीवन को सुखमय तथा लाभप्रद बनाने के लिए उपयोगी नाना विषयों का ज्ञान होता है। ये उपदेश सुग्राह्य होते हैं। इसी नीति–आख्यान के विषय में वाचस्पति गैरोला ने कहा है कि महाभारत के उपाख्यानों में जो त्याग, वैराग्य, क्षमा, दया, दाक्षिण्य, करुणा, उदारता, पशु–पक्षी, देव–मानव, भूत–प्रेत और साधु सन्तों से संबंधित दूसरी बातें मिलती हैं, उनका भी अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। इन प्रसंगों का समावेश साधुओं, सन्तों, भिक्षुओं तथा सन्यासियों ने किया।[10]

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने कहा है कि नीति काव्य के सूक्तियों के वास्तविक रचयिता के विषय में हमारा ज्ञान अधूरा है, परन्तु इनका सम्बन्ध चाणक्य से इतनी घनिष्ठता से जुड़ा है कि इन सूक्तियों को हम चाणक्य नीति के नाम से स्वभावतः पुकारते हैं। इसका मुख्य कारण चाणक्य का एक महनीय राजवेत्ता होना है। फलतः इनमें व्यवहार संबंधी पद्यों के संग में राजनीति संबंधी श्लोकों का सदृभाव मिलता है। इनमें कतिपय पद्य–मनुस्मृति में महाभारत में, तथा पुराणों में भी उपलब्ध होते हैं।[11] इससे ऐसा परिलक्षित होता है कि महाभारत के सभी नीत्याख्यान प्रक्षेप हैं। नीत्याख्यान में अनुष्टुप छन्दों का प्राचुर्य है। कभी–कभी अन्य छन्द भी प्रापत होते हैं वनपर्व में सम्मिलित धर्म–व्याध प्रसंग, यवक्री–कथा प्रसंग, युधिष्ठिर–द्रौपदी वार्ता, आजगरपर्व, यक्षपर्व इसी के अन्तर्गत आ सकते हैं।

चरित–काव्य– इसके अन्तर्गत रोचक काव्यमय शैली में किसी व्यक्ति का विशेष रूप से वीर या महापुरुष का, घटनाक्रम के अनुसार जीवन चरित्र वर्णित होता है। वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यान इसका उदाहरण है।

कथावस्तु– महाकाव्य सर्गों में निबद्ध होना चाहिए। सर्गों की संख्या आठ से अधिक होना चाहिए। इसकी कथा विस्तृत एवं पूर्ण–जीवन गाथा होती है। कथा का प्रारम्भ आशीर्वचन या मंगलाचरण से हो, तथा सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की सूचना होनी चाहिए। महाकाव्य की कथा इतिहास अथवा किसी महापुरुष की वास्तविक जीवन–गाथा पर आधारित होती है।[12]

महाभारत में निबद्ध पर्व उसके सर्ग हैं, जिनकी संख्या अठारह है। यह ऐतिहासिक कथा है। कथा के प्रारम्भ में मंगलाचरण है।[13] वनपर्व के अन्त में ही विराट पर्व की सूचना प्राप्त होती है।

रस– महाकाव्य में सभी रसों का वर्णन आवश्यक है। व्यापक जीवन के विविध वृत्तान्तों के कथानक में विभिन्न रसों का होना आवश्यक है, परन्तु कथावस्तु और चरित्र में एक निश्चित एवं क्रमबद्ध विकास के लिए श्रृंगार, वीर और शान्त इन तीन रसों में से एक रस का प्रधान होना आवश्यक है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है कि महाभारत में पुरुषार्थ के मोक्ष का लक्षण दर्शाकर महामुनि ने अपने महाप्रबन्धक में शान्तरस को मुख्य माना है। व्यास जी का ध्येय केवल युद्धों का वर्णन नहीं, अपितु इस भौतिक जीवन की निस्सारिता को प्रमाणित करना है, अतएव वीर रस इस काव्य का अंगीरस है।[14]

छन्द– कथा के विकास और रस प्रवाह की अबाध गति के लिए एक सर्ग में एक ही छन्द के प्रयोग का नियम है, सर्ग के अन्त में छन्द बदलना चाहिए। छन्द चमत्कार वैविध्य या अद्‌भुत रस की निष्पत्ति के लिए किसी एक सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग किया जा सकता है।

महाभारत में मुख्यतया अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है। किन्तु सौति ने इसे सुन्दर शब्दों एवं विविध छन्दों से अलंकृत काव्य कहा है।[15] वरदाचारी ने महाभारत की भाषा को सरल, गम्भीर एवं प्रभावशाली माना है।[16] डॉ. सुकथनकर ने महाभारत में प्रयुक्त संस्कृत भाषा और अनुष्टुप छन्द को महाकाव्य के लिए अत्यन्त उपयुक्त माना है।[17] विन्टरनिट्स ने भी महाकाव्य में प्रयुक्त अनुष्टुप छन्द की सराहना की है।[18]

वर्णन– महाकाव्य में विविधता एवं यथार्थता दोनों का होना आवश्यक है। अतः इसके अंतर्गत जीवन के सभी दृश्यों, प्रकृति के विभिन्न रूपों और विविध भावों का वर्णन होना चाहिए।

महाकाव्य का प्रभाव समाज पर प्रतिबिम्बित होता है। इसकी भाषा सुबोध एवं सुगम्य होती है। कथा श्रोता के मनोमस्तिष्क पर प्रभाव डालती है। इसी कारण, वर्णन के भीतर कहीं–कहीं सज्जनों की प्रशंसा एवं दुर्जनों की निन्दा का विधान है।

वनपर्वान्तर्गत अगस्त्य की कथा, मार्कण्डेयसमस्यापर्व, अर्जुनाभिगमनपर्व आदि अनेक ऐसे पर्व हैं, जिसमें सज्जनों की स्तुति की गयी है तथा यवक्री कथा प्रसंग, घोषयात्रा पर्व आदि पर्वों में दुर्जनों की कड़वे शब्दों में भर्त्सना की गयी है। इसके अतिरिक्त प्रकृति का सुन्दर चित्रण कैरातपर्व में तथा मृगस्वप्नोद्‌भव पर्व में किया गया है।

नाम– महाकाव्य का नाम कवि, नायक या कथातत्व के आधार पर होता है, जिससे उसके द्वारा या तो नायक या कवि या मुख्य घटना अथवा प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान हो सके।

महाभारत के नामकरण का आधार कथातत्व है तथा इसके विभिन्न पर्वों के नामकरण का आधार भी कथातत्व है। वनपर्व भी इससे अलग नहीं।

उद्‌देश्य–महाकाव्य का उद्‌देश्य चतुर्वर्ग–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति है। महाभारत का उद्‌देश्य मोक्ष–प्राप्ति है तथा साथ ही साथ यह, यह भी सिद्ध करता है कि धर्मपूर्वक अथोपार्जन तथा कामतृप्ति भी मोक्ष के ही साधनभूत हैं।

ये चारों पुरुषार्थ अन्योन्याश्रयी हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महाभारत केवल महाकाव्य नहीं वरन् एक महाप्रबन्ध है, जिसमें पुराण, आख्यान, चरित्रकाव्य एवं महाकाव्य के गुण सन्निहित है। डॉ. सुकथनकर के अनुसार, एक महान् प्रबन्ध के आधार ने इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रभावशाली बना दिया है। संवाद की शैली के कारण यह अधिक सजीव एवं रोचक बन गया है। भरतवंशी वीरों के संघर्ष और युद्ध कथा बृहत् एवं रोमांचित करती है, महाभारत के पात्रों का अद्‌भुत चरित्र और इसकी मार्मिक घटनायें प्रभावशाली काव्य का उपकरण बन गई है।[19] एस.एन. दासगुप्ता ने महाभारत को महाप्रबन्ध के रूप में ही स्वीकारा है। उनके अनुसार महाभारत महाकाव्य के लक्षणों का अतिक्रमण करता है। यह तात्कालिक समाज के चरित्रों तथा उनके संघर्षमय क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं, भावनाओं, विचारों, अनुभूतियों के विविध रूपों का वर्णन करता है।[20]

अरस्तु का कथन है कि महाकाव्य के आवश्यक तत्व कथावस्तु का संगठन, चरित्र–चित्रण, भाषा और छन्द का सुष्ठु सुन्दर और ओजपूर्ण प्रयोग तथा उदात्त विचारधारा है।[21] भारतीय विद्वान् भी इसे ही मान्यता देते हैं।

वनपर्व की काव्यकला को भाषा, छन्द अलंकार आदि के आधार पर विवेचन करना निरर्थक है, क्योंकि महाकाव्य की काव्यकला में इन सब तत्वों पर प्रकाश नहीं डाला गया है। महाकाव्यों में सदैव एक समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य विद्यमान संघर्ष का चित्रण होता है। ऐसी स्थिति में महाकाव्य के आधार पर तात्कालिक समाज के संस्कृति, धर्म, दर्शन, नारी की स्थिति, व्यक्तियों की सामान्य मनोवृत्ति तथा उनमें विद्यमान द्वन्द का पता चलता है, इनकी ही विवेचना रहती है। इनमें प्रकृति वर्णन, यात्रा, तीर्थयात्रा, सौन्दर्य वर्णन आदि केवल अनुरंजन या एकरसता को समाप्त करने के अभिप्राय से होती है। महाभारत में कहीं भी शैथिल्यता का समावेश नहीं हुआ है, न ही कहीं वनपर्व में। महाकाव्य में भाषा सुबोध तथा सुगम्य होती है, आवश्यकतावश विविध छन्दों का या अलंकारों का प्रयोग होता है, केवल भाषा पाण्डित्य के लिए नहीं। वनपर्व में कहीं भी इस तरह के पाण्डित्य का प्रयोग नहीं हुआ है। वनपर्व में एक विशेषता यह है कि पद्यात्मक शैली के साथ ही साथ गद्यात्मक शैली का भी समावेश हुआ है।

महाभारत के वनपर्व में संगीत विषयक कुछ विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। वनपर्व में माना गया है कि यह साम–मंत्रों की गायन पद्धति पर आधारित है तथा इसे सामवेद का एक उपवेद गान्धर्व वेद कहा जाता है।[22] साम–मंत्रों से तीर्थ–स्थली गुंजायमान होती रहती थी तथा गीत समताल पर आधारित थे। तीर्थयात्रापर्व में युधिष्ठिर कहते हैं कि भीमसेन! यहाँ समताल से गाते हुए गीतों तथा साम–मंत्रों का विविध स्वर सुनायी पड़ता है, जो सम्पूर्ण भूतों के चित्र को आकर्षित करने वाला है। यह परमपवित्र एवं कल्याणमयी देवनदी महागंगा है, इनका दर्शन करो।[23]

संगीत का प्रसार देवलोक एवं गन्धर्व लोक में हो चुका था। इन्द्र के दरबार में जब महोत्सव का आयोजन होता था, तब अप्सराएँ नृत्य करती थीं तथा गन्धव वाद्य बजाते थे।[24] गन्धर्व वाद्य बजाने की कला में पारंगत माने जाते थे, साथ ही साथ वे गायन में भी दक्ष हो गये थे। इन्द्र ने अर्जुन से अस्त्रों की शिक्षा पाने के बाद कहा कि तुम चित्रसेन नामक गन्धर्व से नृत्य एवं गीत का विधिवत ज्ञान प्राप्त करो। वाद्यों का प्रचलन तो मनुष्य लोक में हो नहीं किन्तु, कालान्तर में यह विद्या तुम्हारे लिए उपयोगी सिद्ध होगी।[25]

साम मंत्रों के गायन में तुम्बुरु नामक गन्धर्व के नाम का उल्लेख वनपर्व में हुआ है कि तात् पर्वसन्धि के समय गन्धमादन पर्वत पर कुबेर की सेवा में उपस्थित हुए तुम्बुरु गन्धर्व के साम–गान का स्वर स्पष्ट सुनायी देता है।[26] स्वर्गलोक में समय व्यतीत करने का माध्यम संगीत भी था। निवातकवचयुद्ध पर्व में अर्जुन स्वर्ग से वापस आकर युधिष्ठिर को अपने स्वर्ग में बिताये समय की दिनचर्या का वर्णन करते हुए कहते हैं कि

मैं वहाँ मनोहर गीत सुनता था, कभी पर्याप्त रूप से दिव्य वाद्यों का आनन्द लेता और कभी–कभी श्रेष्ठ अप्सराओं के नृत्य भी देख लेता था।[27]

स्वर्गलोक के अलावा पृथिवी पर यह विद्या गोप एवं गोपिकाओं के मध्य भी प्रचलित बताया गया है। जब घोषयात्रापर्व में दुर्योधन युधिष्ठिर के दैन्यावस्था पर उपहास के मन्तव्य से गौओं की गणना हेतु जाता है तब कुछ गोप–गायकों एवं कन्या नर्त्तकियों के वर्णन हैं।[28] यद्यपि इस प्रकार के उत्सवों पर नृत्य एवं गायन का साधारणतया कोई वर्णन नहीं, किन्तु सूत एवं मागध स्तुतिगान करके राजा एवं राजकुमारों को जगाने का कार्य किया करते थे। इन वर्णनों के अलावा ऋषि मांगणक के मत्त होकर नृत्य करने का वृतान्त भी है। उनके नृत्य में ऐसी शक्ति थी कि सम्पूर्ण चराचर नृत्य करने को बाध्य हो गया। पर इस घटना को हर्षपूर्वक न लेकर चिंताजनक माना गया है कि उनके नृत्य को रोकने के लिए स्वयं शिव को आना पड़ा। इससे द्योतित होता है कि नृत्य कुछ सम्मानजनक नहीं माना जाता था।[29] नर्त्तकों तथा गायकों को युद्ध–काल में देश से निर्वासित ही कर दिया जाता था।[30] किन्तु युद्ध में प्रत्येक जाति के अपने–अपने अलग–अलग बाजे हुआ करते थे। यादव वंश में ढोल, नगाड़े एवं मृदंग आदि यादव जुझारू वाद्य थे तो निवातों के बड़े–बड़े भयानक आवाज करने वाले वाद्य जिनके श्रवण मात्र से जलचर मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे।[31]

महाभारत के वनपर्व में यह भली–भाँति प्रदर्शित किया गया है कि जिस प्रकार की संस्कृति है उसी प्रिकार का संगीत। देव एवं गन्धर्वों के संगीत में आनन्द है तो असुरों के वाद्य में मृत्यु की भयानकता। यादव वंशीय गोप–गोपिकाएँ इस विद्या में अन्य लोगों से ज्यादा निपुण है। महाभारतकार को मान्य है कि नृत्य एवं गायन मनुपुत्रों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। वाद्यों का महत्व सभी संस्कृतियों में एक समान प्रतीत होता है– राज्याभिषेक, यात्रा, उत्सव, विवाह, उपनयन, युद्ध आदि अवसरों पर भिन्न–भिन्न वाद्यों का उपयोग होता था। युद्ध में इन वाद्यों के माध्यम से उत्साह एवं शौर्य का संचार किया जाता था।[32]

वास्तुकला एवं वनपर्व

महाभारत की कथा का मूल केन्द्र है कौरवों एवं पाण्डवों के मध्य हुआ युद्ध। हस्तिनापुर एवं इन्द्रप्रस्थ इन दोनों विरोधियों की क्रमशः राजधानियाँ हैं। इन्द्रप्रस्थ के निर्माण का कार्य असुरों के शिल्पी मय के द्वारा सुसंपादित हुआ, इसे असुरों का विश्वकर्मा कहा जाता था। यह हस्तिनापुर से कई–कई कोटि उत्कृष्ट था। इसी ऐश्वर्य ने दुर्योधन के भीतर पाण्डवों के प्रति ईर्ष्या की आग को और अधिक प्रज्जवलित किया। इससे सुस्पष्ट होता था कि कुशल राजा के महल एवं उसके नगर की संरचना उत्कृष्ट होती थी। वास्तुकला इसी तथ्य का पुष्ट करती है। वैभवशाली राजा सभी प्रकार की सुख–सुविधाओं से परिपूर्ण एक महल चाहता था जिससे उसकी स्मृद्धि का प्रसार दूर–दूर तक हो। शत्रुओं से अपने नगर की सुरक्षा हेतु वह नगर की व्यवस्था इस प्रकार करता था कि उसका महल तथा जनसाधारण सुरक्षित रहें। इस प्रकार ये दोनों वास्तुविभाग के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाती है। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने कहा है कि राजमहल को वास्तु के हृदय के पास तथा इसके चारों ओर चतुर्वर्णी समाज को व्यवस्थित करनी चाहिए।[33] वास्तुहृदय के उत्तर के भाग में राजा के अन्तःपवुर की स्थापना होनी चाहिए।[34] उसके पूर्वोत्तर में आचार्य, पुरोहित, तोय–स्थान तथा मंत्रीगण निवास करें। पूर्व–दक्षिण में रसोइया, हस्तिशाला एवं कोष्ठागार हो। पूर्व दिशा में क्षत्रिय तथा दक्षिण–पूर्व भाग में भाण्डारगार, धूत–गृह हो।[35] दक्षिण–पश्चिम भाग में आयुधागार हो तथा उसके परे नगर के धनी व्यक्तिगण, शासन के विभिन्न उच्च अधिकारीगण, हलवाई, मांस एवं सुरा के विक्रेता आदि वैश्य दक्षिण दिशा में निवास करें।[36] इसके पश्चिम दक्षिण भाग में खरोष्ट्रगुप्तिस्थान एवं कर्मगृह, पश्चिम–उत्तर भाग यानरथशाला तथा ऊनी, सूती, वस्त्र बुनकर, चर्मकार, शस्त्रकार, शूद्रादि पश्चिम दिशा में निवास करें। उत्तर पश्चिम भाग में बनियों एवं

वैद्यों के गृह हों, उत्तर–पूर्व भाग में गौशाला एवं अश्वशालाएँ हों तथा इसके बाद उत्तर में ब्राह्मण निवास करें।[37]

पुर के मध्य में शिव, वैश्रवण तथा अश्विनी आदि के मन्दिर का निर्माण करें तथा वहीं मदिरालय भी हो।[38]

उत्तर–पूर्व में उत्तम वर्ण वालों के शमशान हों तथा दक्षिण में अवरवर्ण वालों के शमशान हों। शमशान में चाण्डाल निवास करें।[39] महाभारत के शान्तिपर्व में राजा के निवास योग्य नगर एवं दुर्ग के वर्णन का उल्लेख है। इसमें भीष्म युधिष्ठिर को बताते हैं कि जहाँ सब प्रकार की सम्पत्ति प्रचुर मात्रा में भरी हुई हो तथा जो स्थान बहुत विस्तृत हो, वहाँ छः प्रकार के दुर्गों का आश्रय लेकर राजा को नगर बसाना चाहिए। उन छह दुर्गों के नाम धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग, जलदुर्ग तथा वनदुर्ग हैं। जिस नगर में इनमें से कोई न कोई दुर्ग हो, जहाँ अन्न एवं अस्त्र–शस्त्रों की अधिकता हो, उसके चारों ओर मजबूत चहारदीवारी और गहरी खाई बनी हो, जहाँ हाथी, घोड़े और रथों की बहुतायत हो, जहाँ विद्वान् और कारीगर बसे हों, जिस नगर में आवश्यक वस्तुओं के संग्रह से भरे हुए कई भंडार हों, जहाँ धार्मिक तथा कार्यकुशल मनुष्यों का निवास हो, जो बलवान मनुष्य, हाथी और घोड़ों से सम्पन्न हीं, चौराहे तथा बाजार जिसकी शोभा बढ़ा रहे हों, जहाँ न्याय–विचार एवं न्यायालय सुप्रसिद्ध हो, जो सब प्रकार से शान्तिपूर्ण हो, जहाँ कहीं से कोई भय या उपद्रव न हो, जिसमें प्रकाश का अच्छा प्रबन्ध हो, संगीत एवं वाद्यों ध्वनि होती रहती हो, जिसमें बड़े–बड़े शूरवीर एवं धनाढ्य व्यक्ति निवास करते हों, वेदमंत्रों की ध्वनि गूँजती रहती हो तथा जहाँ सामाजिक उत्सव और देवपूजन का क्रम चलता रहता हो, ऐसे नगर के भीतर अपने वश में रहने वाले मंत्रियों तथा सेना के साथ राजा को स्वयं निवास करना चाहिए।[40]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अध्ययन से पता चलता है कि उन्होंने महाभारत के वास्तुकला पर ही अपनी नगर–व्यवस्था का वर्णन किया है, क्योंकि उन्होंने महाभारत में वर्णित नगर में ही संशोधन कर दिशा के अनुरूप अपने अर्थशास्त्र में नगर का अनुशीलन किया है।

वनपर्व में वास्तुकला की विस्तृत जानकारी का सर्वथा अभाव है। अरण्यपर्व के अन्तर्गत शल्य द्वारा द्वारिका पर आक्रमण किये जाने पर द्वारिका के दुर्ग–निर्माण विषयक जानकारी प्राप्त होती है। द्वारका ऐसे स्थान पर अव्यवस्थित थी जहाँ पर पहुँचना असम्भव था। इसी को श्रीकृष्ण ने कहा कि द्वारका तो स्वभाव से ही दुर्गम्य सुरक्षित और अस्त्र–शस्त्रों से सम्पन्न है तथापि उस समय उसकी विशेष व्यवस्था थी।[41] द्वारकापुरी में सब ओर पताका लहरा रहीं थीं। ऊँचे–ऊँचे गोपुर यहाँ चारों ओर सुशोभित थे।[42] सैनिकों के आत्मरक्षापूर्वक युद्ध ही सुविधा के लिए स्थान–स्थान पर बुर्ज बने हुए थे। युद्धोपयोगी यन्त्र वहाँ बैठाये गये थे तथा सुरंग द्वारा नये–नये मार्ग निकालने के काम में लोग जुटे थे। सड़कों पर लोहे के विषाक्त काँटे अदृश्य रूप से बिठाये गये थे अट्टालिकाओं और गोपुरों में पर्याप्त अन्न का संग्रह किया गया था।[43]

वनपर्व में कहा गया है कि द्वारकापुरी में आने के लिए पुल मार्ग में बनाये गये थे। वस्तुतः ये पुल भी दुर्ग की रक्षा के उद्देश्य से ही बनाये जाते थे। शान्ति काल में लोग व्यापारादि के लिए इसका प्रयोग करते थे और युद्धकाल में इसे तोड़ दिया जाता था, ताकि शत्रुदल के सैनिक दुर्ग तक न पहुँच पाये।[44] कौटिल्य ने भी इस सेतुबन्ध के निर्माण को आवश्यक माना है।[45]

नलोपाख्यान पर्व में दमयन्ती के स्वयंवर के प्रसंग में रंगमण्डप का वर्णन हुआ है। रंगमण्डप जहाँ राजकुमारी का स्वयंवर सम्पादित होना था, उसके खम्भे सोने से बने हुए थे तथा उसे आकर्षक बनाने के लिए तोरण का प्रयोग किया गया था।[46]

इसके अतिरिक्त निवासतकवचयुद्धपर्व में पौलोम और कालकुंज नामक दानवों के आश्चर्यमयी नगर का वर्णन वनपर्व से प्राप्त होता है। यह नगर वहाँ के निवासियों की इच्छा से विमान की भाँति सर्वत्र आ जा सकता था।[47] यह नगर ऊँचे–ऊँचे गोपुरों एवं अधलिकाओं से सुशोभित था। नगर की चारों दिशाओं में एक–एक करके फाटक लगे हुए थे। शत्रुओं का नगर में प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन था। सब प्रकार के रत्नों से निर्मित वह दिव्य नगर अद्‌भुत दिखाई पड़ता था।[48]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वनपर्व में नगर सुरक्षा सम्बन्धी स्थापत्य या वास्तुकला के अतिरिक्त अन्य जानकारी को प्राप्त करना सम्भव नहीं। किन्तु खम्भों एवं गोपुरों के वर्णन में भित्तिचित्र आदि का वर्णन प्राप्त नहीं होता। अतः कहा जा सकता है कि उस काल में इस कला का आविर्भाव नहीं हुआ था।

सन्दर्भ

1. *काव्यशास्त्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 30*
2. *काव्यालंकार, भामह*
3. *काव्यमीमांसा, राजशेखर, पृ. 4*
4. *कुन्तक, साहित्मनयो शोभाशालितां प्रति काप्यसौ।*
   अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः।। (वक्रोक्तिजीवितः, कुन्तक, 1.17)
5. *Encyclopaedia Britanica, Poetry : Art, Work of the Poet.*
6. *Poetry is the utterance of a passion for truth, beauty and power, embodying and illustrating its conception by imagination and fancy and modulating its language on the principle of variety in unity, Leigh Hunt.*
7. *Poetry is the art of expression in melodious words, thoughts which are the creation of imagination and feelings, Chamber's dictionary.*
8. *काव्यं शास्त्रेहजीसाक च प्रियशास्त्रे जळाक्व वचै*
   काव्येतिहासः शास्त्रेतिहासस्तदपि षडविधम्।। (सरस्वतीकण्ठाभरण, भोजदेव 2–139)
9. *कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्।। (महा., आदि. 2.284)*
10. *जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 29, 30*
11. *संस्कृत साहित्य का इतिहास, आ. बलदेव उपाध्याय, पृ. 285*
12. *सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।*
    आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्।।
    इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्। (काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद 14, 14½)
13. *नारायणं नमस्कृत्यं नरं चैव नरोत्तमम्।*
    देवी सरस्वतीं व्यासो ततौ जयमुदीरयेत्।। (महा., आदि. 1.1)
14. *महाभारतेऽपि शास्त्रकाव्यरूपच्छायान्वयिनि वृष्ठिपाण्डवबिरसावसानवैभनस्यदायिनीं समाप्ति– मुपनिध्नता महामुनिना वैराग्य–जननं तापर्य प्रधान्येन स्वप्रबन्धस्य दर्शयता मोक्ष–लक्षणः पुरुषार्थः शान्तो रसश्च मुख्यतया सूचितः।। (ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धनाचार्य, उद्योत 4)*
15. *अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः।*
    छन्दोवृत्तैश्च विविधैरन्वितं विदुषां प्रियम्।। (महा., आदि., 1.28)
16. *Vardachari, A History of Sanskrit Literature, P. 39.*
17. *Dr. Sukhathankar, Meaning of Mahabharata, P. 49*
18. *Wintermitz, A History of Sanskrit Literature Part 1, P. 461.*
19. *Dr. Sukhathankar, Meaning of Mahabharata, P. 20*
20. *It does not follow any of the cannon prescribed for a Mahakavya by later Rhetoricians. But it is thoroughly dramatic in its nature, its personage after appear with real characters and the conflict of action, and reaction of passions against passion of ideals of thoughts of diverse nature come into constant conflict and dissolve themselves into a flow of beneficent harmony. It is a criticism of life,*

manners and customs and of changing ideals. S.N. Das Gupta, Mahabharata, its dynamic character.

21. *योऽयसौ चपिविशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः।*
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधौ। (संगीत रत्नाकर)
22. *स च गान्धर्वमखिलं ग्राहयामास मां नृप। (महा., वन. 168.157½)*
23. *गीतानां समतलानां तथा साम्ना च निःस्वन।।*
श्रूयते बहुधा भीम सर्वभूतमनोहरः।।
महागंगामुदीक्षस्व पुण्यां देवनदीं शुभाम्।। (महा., वन. 158.96½ 98)
24. *वीणासु वाद्यमानासु गन्धर्वैः शक्रनन्दन।*
दिव्ये मनोरमे गेये प्रवृत्ते पृथुलोचन।।
सर्वाप्सरःसु मुख्यासु प्रनृत्तसासु कुरुद्वहा। (महा., वन. 46.26½)
25. *ततः शक्रोऽब्रवीत पार्थं कृतास्त्रं काल आगले।*
नृत्यं गीतं च कौन्तेय चित्रसेनादवाजुप्नुहि।।
वादित्रं देवविहितं नृलोके यन्न विद्यते।
तदर्जयस्व कौन्तेय श्रेयो वै ते भविष्यति।। (महा., वन. 44.6, 7)
26. *उपसीनस्य धनदं तुम्बुरोः पर्वसन्धिषु।*
गीतसामस्वनस्तात श्रूयते गन्धमादेन।। (महा., वन. 159.29)
27. *शृण्वन् वै गीतशब्दं च तूर्यशदं च पुष्कलम्।*
पश्यंश्चाप्सरसः श्रेष्ठा नृत्यन्तीर्भरतर्षभ्।। (महा., वन. 160.59)
28. *ततो गोपाः प्रगातारः कुशला नृत्यवादने।*
धार्तराष्ट्रमुपातिष्ठन् कन्याश्चर्व स्वलंकृताः।। (महा., वन. 240.8)
29. *प्रबोध्यते मागधासूतपूरौ–र्नित्यं स्तुवद्विन्द्र कल्पः। (महा., वन. 236.9)*
30. *ततस्तस्मिन प्रनृत्ते तु स्थावरं जंगम्र च यत्।*
प्रनृत्तभुमयं वीर तेजसा तस्य मोहितम्।। (महा., वन. 83.118)
31. *आनर्ताश्च तथा सर्वे नटा नर्तक गायनाः।*
बहिर्निर्वासिता वीर तेजसा तस्य मोहितम्।। (महा., वन. 50.14)
32. *सोष्ट्रिका भरतश्रेष्ठ समेरीपणवाचका।*
सतोभराङ्कुशा रान् सशतध्नीकलांग ला।।
ततस्ते दानवास्तव वादित्राणि सहस्त्रशः।
विकृतस्वररुपाणि भृशं सर्वाण्यनादयन्।।
तेन शब्देन सहसा समुद्रे पर्वतोपभाः।
आल्पवन्त गतै सत्त्वैर्मत्स्याः शतसहस्र शः।। (महा., वन. 169.19, 20)
33. *प्रवीरे वास्तुन राजनिवेश्चातुर्वर्ण्यसमाजीवे। (अर्थ., कौ. 2.4.6)*
34. *वास्तुहृदयादुत्तरे नवभागे यथोक्त विधानमन्तः पुरं पाङ्मुखमुदङ्मुखं वा कारयेत।*
35. *तस्य पूर्वोत्तरं भागमचार्यपुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चा वसेयुः पूर्वदक्षिणं भागं महानसं हस्तिशाला कोष्ठागारं च। ततः परं गन्धमाल्यरसपण्या प्रसाधनकारवः क्षत्रियाश्च पूर्वा दिशमधिवसेयुः।*
36. *दक्षिणपूर्व भाग भाण्डारमक्षपटलं कर्मनिषयाश्च दक्षिण–पश्चिमं भागं कुप्यगृहमायुधागार च। ततः परं नगरधान्य–व्यवहारमरिकार्मान्तिक बलाध्यक्षाः वैश्याश्च दक्षिणां दिशमधिवसेयुः।। (अर्थ., कौ. 2.4.7, 8, 9, 10, 11)*

37. पश्चिमदक्षिणं भागं खरोष्ट्रगुप्तिस्थानं कर्मगृहं च, पश्चिमोन्तरं भागं यानरथशालाः ततः परम् अर्णसूत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः शूद्राश्च पश्चिमां दिशमधिवसेयुः। उत्तर पश्चिमं भागं दण्यभैज्ष ज्यगृहम, उत्तरपूर्वं भागं कोशो गवांश्च च। ततः पर नगराज देवता लोहमणि कारवो ब्राह्मणाश्चोत्तरां दिशमच्चिवस्तेयुः।

38. अपराजिता प्रतिहतजयन्तवैजयन्तकोष्ठान् शिववैश्रवणाश्विश्री मदिरागृहाणि पुटमध्ये कारयेत्।

39. उत्तरः पूर्वो या श्मशान भागो वर्णोत्तमा नाम्। दक्षिणेन श्मशानं वर्णावराणाम्। पाषण्ड चण्डालानां श्यशानान्ते वासः। (अर्थ कौ. 2.4.12, 13, 14, 15, 17, 22)

40. षड्विधं दुर्गमास्थाय पुराण्यपथ निवेशयेत्।
सर्वसम्पत्प्रधानं यद् बाहुल्यं चापि सम्भवेत्।।
धन्वदुर्गं महीदुर्गं गिरिदुर्गं तथैव च।
मनुष्यदुर्गं अब्दुर्गं वनदुर्गं च तानि षट्।।
यत्पुरं दुर्गसम्पन्नं धान्यायुधसमन्वितम्।
दृढप्राकारपटिखं हस्त्यश्वरथसंकुलम्।
विद्वासः शिल्पिनो यत्र निचयाश्च सुसंचिता।।
धार्मिकश्च जनो यत्र दाक्ष्यमुत्तमयास्थितः।।
ऊर्जस्विन्रथागाश्वं चत्वरापणशोभितम्।
प्रसिद्धव्यवहारं च प्रशान्तमकुतोमयम्।।
सुप्रभं सानुनादं च सुप्रशस्तनिवेशनम्।
शूराढय जनसम्पन्नं ब्रह्म घोषानुवादितम्।।
समाजोत्सवसम्पन्नं सदा पूजित दैवतम।
वश्यामात्यबलो राजा तत्पुरं स्वयमाविशेत्।। (महा., शान्ति. 86, 4—10)

41. प्रकृत्या विषमं दुर्गं प्रकृत्या च सुरक्षितम्।
प्रकृत्या चायुधोपेतं विशेषेण तदानध।।

42. पुरी समन्ताद् विहिता सपताका सतोरणा।
सचक्रा सहुडा चैव सयन्त्ररवनका तथा।

43. सोपशल्यप्रतोलीका साट्टालकगोपुरा।
सचकग्रहण चैव सोल्कालातावपोथिका।। (महा., वन. 15, 17, 5, 6)

44. संक्रमा भेदिताः सर्वे नावश्च प्रतिषेधिताः।
परिरवाश्चापि कौरव्य कालैः सुनिचिताः कृताः।। (महा., वन. 15.15)

45. बहिः परखिाया धनुः शताप कृष्टाश्चैत्यपुण्यस्थान।
वनसेतुबन्धाः कार्याः, यथादिशं च दिग्देवताः।। (अर्थ., कौ. 2.4.20)

46. कनकस्तम्भरुचिरं तोरणेन विराजिततम्।
विपिशुस्ते नृपा रङ्ग महासिंहास इवाचलम।। (महा., वन. 57.3)

47. निवर्तमानेन मया यहद् दृष्टं ततोऽपरम्।
पुरं कामचरं दिव्यं पावकार्कसमप्रभम्।।

48. गोपुराट्टालकोपेतं चतुर्द्वारं दुरासदम्।
सर्वरत्नमयं दिव्यमद्मुतोपमदर्शनम्।। (महा., वन. 173.1.3)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. काव्य शास्त्र, डॉ0 भगवती मिश्र, बम्बई मुद्रण प्रेस, वि0वि0 प्रकाशन, वाराणसी, सप्तम सं0 1984
2. काव्य मीमांसा, राजशेखर, गायकवाड़ओरियण्टल सीरीज, बड़ोदा, सप्तम सं0 1934

3. *काव्यदर्श, दण्डी, भामह, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, बनारस, 1928*
4. *महाभारत (सम्पूर्ण) व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर।*
5. *संगीत रत्नाकर, शाङ्र्गदेव*
6. *श्रीमती देवी भागवत पुराण, व्यास, नाम, पबिलशर्स, दिल्ली।*